



□ सौभाग्यमल जैन
[प्रबुद्ध विचारक एवं चिन्तक]

अपरिग्रह और समाजवाद : एक तुलना



यह सब कोई जानते हैं कि भगवान् महावीर का तत्त्वदर्शन 'अहिंसा' पर आधारित है। जैन आगम के प्रश्नव्याकरण सूत्र में भगवान् महावीर ने 'अहिंसा' भगवती के ६० पर्यायवाची नामों का वर्णन किया है। जब हम अहिंसा शब्द को लेते हैं तो जन साधारण केवल किसी प्राणी का प्राणघात न करने की बात से तात्पर्य लेता है किन्तु वास्तविकता यह है कि भगवान् महावीर ने जहाँ समस्त प्राणी जगत के प्रति अहिंसक रहने का विचार दिया वहीं समाज में वैचारिक अहिंसा के रूप में 'अनेकांत' तथा सामाजिक तथा आर्थिक न्याय के लिये 'अपरिग्रह' का विचार दिया। यह सारी अहिंसा की ही प्रक्रिया है। यदि हम गहराई से अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि 'अपरिग्रह' एक विचार है 'वाद' नहीं है। जो सिद्धान्त, वाद का स्थान ग्रहण कर लेता है उसमें जड़ता, संकुचितता आ जाती है जबकि 'विचार' में सदैव उन्नतशीलता रहती है। जैसे-जैसे मानव समाज में वैचारिक प्रगति होती जाती है वैसे-वैसे उस सिद्धान्त की प्रगतिशील व्याख्या होती जाती है। भगवान् महावीर से पूर्व तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय में उनका उपदेश 'चातुर्याम धर्म' कहा जाता था। उन्होंने अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह चार सिद्धान्तों को अपनाने पर बल दिया था। अनुमान यह है कि उन्होंने 'स्त्री' को भी एक परिग्रह माना तथा उसका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार नहीं किया, किन्तु भगवान् महावीर ने अनुभव किया कि—महिला स्वयं एक बड़ी शक्ति है, उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है, तब उन्होंने पुरुष के लिये (यदि वह गृहस्थ है) स्वदारसन्तोष तथा महिला के लिये (यदि वह गृहस्थ है) स्वपतिसन्तोष का व्रत रखने की दृष्टि से चतुर्थ व्रत ब्रह्मचर्य का विधान किया। इस प्रकार पंचयाम धर्म का उपदेश दिया। तात्पर्य यह है कि अपरिग्रह एक विचार है, जिसमें सदैव नित नवीनता तथा प्रगतिशीलता विद्यमान है। हमारे युग के महापुरुष गांधीजी ने भी अपने विचारों का कोई 'वाद' या 'गांधीवाद' स्वीकार नहीं किया अपितु देश को एक विचार दिया।

भगवान् महावीर ने अनुभव किया कि समाज में अर्थजन्य द्वेष तथा ईर्ष्या विद्यमान है, उसके निराकरण का उपाय सर्वाश या अंशतः अपरिग्रह के विचार में ही है। मनुष्य की इच्छा आकाश के समान 'अनंत' है, यदि उस पर नियंत्रण न हो तो वह उत्तरोत्तर वृद्धिगत ही होती जाती है, किन्तु प्रश्न यह है कि नियन्त्रण स्वेच्छा का हो या कानून द्वारा थोपा गया? अनुभव यह बताता है कि जब कोई बात कानून द्वारा थोपी जाती है तो मनुष्य अपनी स्वतंत्रता का हनन अनुभव करता है तथा उसके Violation के मार्ग खोजता है, जबकि स्वेच्छा के नियंत्रण में मनुष्य उल्लंघन का प्रयत्न नहीं करता। तात्पर्य यह कि 'अपरिग्रह' एक स्वेच्छापूर्ण नियन्त्रण है। मनुष्य जब अपनी अपरिमित इच्छा पर स्वेच्छा से नियंत्रण करने का नियम लेता तो अपना अहोभाग्य मानता है तथा ऐसा अनुभव करता है कि वह अपने पर नियंत्रण करके समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन कर

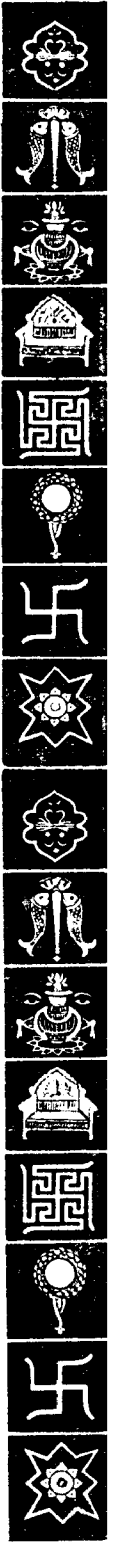
रहा है और अधिक यह कि उसका 'परलोक' सुधरेगा। इसका एक कारण और है, और वह यह कि अपरिग्रह का विचार देश को जिन महापुरुषों ने दिया वह स्वयं अपने जीवनव्यवहार में उसे अमल में लाते थे। चाहे हम उसे 'समता' कहें या 'साम्ययोग' कहें। यह विचार अति प्राचीन है, अपितु यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि यह विचार प्राग् ऐतिहासिक काल से है। युग के साथ उसकी व्याख्या में परिवर्तन हुआ हो किन्तु मौलिक रूप से विचार विद्यमान था। इसकी तुलना में समाजवाद कानून द्वारा स्थापित नियंत्रण है और इस कारण जब यह नियंत्रण लगाया जाता है तब मनुष्य उसके उल्लंघन के मार्ग खोजता है। कारण कि वह कानून द्वारा स्थापित नियंत्रण को विवशता मानता है। इसके अतिरिक्त यह भी बात है कि समाजवाद के मूल पुरस्कर्ता चाहे अपने जीवन में समाजवाद ला चुके हों, वैसा ही जीवन-व्यवहार चलाते हों किन्तु आज का राजनीति से प्रभावित समाजवाद और उसका जनक भारतीय शासन है और आंशिक रूप में प्रादेशिक शासन। चाहे भारतीय शासन हो चाहे प्रादेशिक शासन, उसके प्रमुख, शासनकर्ता, उच्च अधिकारी (जो समाजवाद के अनुरूप विचार रखकर कानून बनवाते हैं) का जीवन उसके अनुरूप नहीं। स्वयं सामन्ती ढंग का विलासपूर्ण तरीकों (वह भी करदाता के प्रदत्त धन के मूल्य पर) से जीवन चलाकर भी समाजवाद की बातें करते हैं। इस कारण उसका प्रभाव नगण्य होता है। यही कारण है कि अपरिग्रह विचार के पीछे कानून की कोई शक्ति Sauction न होते हुए भी अधिक सफल है तथा समाजवाद के पीछे कानून की शक्ति के बावजूद अत्यन्त असफल है। गत २५-२६ वर्षों के प्रयत्नों के बावजूद परिणाम यह है कि धनी, सम्पन्न व्यक्ति अधिक सम्पन्न बन गया तथा गरीब अधिक गरीब बना। यह बात भारतीय शासन द्वारा प्रकाशित सर्वेक्षण की रिपोर्ट्स से भलीभांति प्रगट है। इसी कारण पेश्तर जहां 'गरीबी हटाओ' के नारे बड़ी मुस्तैदी तथा जोश से लगाये जाते थे तथा उसके लिये हमारे शासनकर्ता प्रेरणा देते थे, वहाँ वही शासनकर्ता अब यह कहने लगे हैं कि 'गरीबी' स्वयं नहीं मिट सकती, हमारे पास जादू नहीं है, श्रम करना होगा, आदि। किन्तु यह कहने वाले को इसका उदाहरण स्वयं के जीवन से भी प्रस्तुत करना होगा, तब देश में लहर उत्पन्न होगी।

इसमें संदेह नहीं कि देश को प्रगति पथ पर ले जाने का दायित्व जिन मस्तिष्कों तथा कंधों पर है उनकी वाणी तथा कर्म में साम्य नहीं है। इसी कारण जन-साधारण पर श्रमसाध्य जीवन की बात का प्रभाव नहीं पड़ता। यदि हम अपरिग्रह के पुरस्कर्ता महापुरुषों के जीवन पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट होगा कि वहाँ वाणी कर्म की साम्यता है। लगभग २५०० वर्ष पूर्व जिस महा-पुरुष ने अपरिग्रह के विचार की प्रगतिशील व्याख्या करके देश के सन्मुख रखा वह अकिंचन था। उसका सारा जीवन स्वावलम्बन पर आधारित था। यही नहीं जब उस पर उपसर्गों के कारण विपत्ति आई तो इन्द्र ने आकर प्रार्थना की भगवन् आपको कष्ट न हो इसलिये आपकी रक्षा हेतु मैं साथ रहा करूँ, तब उस महापुरुष ने जो उत्तर दिया उसका भावार्थ था कि—

स्ववीर्येण गच्छन्ति जिनेन्द्राः परम गतिं ।

हे इन्द्र ! मैं अपनी साधना में व्यस्त हूँ, यदि कोई विपत्ति आती हो तो मुझे सहन करना चाहिये। जिनेन्द्र अपनी शक्ति के बल पर ही परम गति को प्राप्त करते हैं। यही नहीं उस महा-पुरुष ने चतुर्विध संघ के महत्वपूर्ण दो घटक साधु तथा साध्वी के लिये जो चर्या बनाई वह स्वयं स्वावलम्बन पर आधारित है, उसमें परमुखापेक्षिता नहीं। वास्तविक रूप से देखा जाये तो वह महापुरुष अपरिग्रही था। आधुनिक भाषा में कहें तो समाजवादी था, जिसने अपने जीवन में स्वयं समता के तत्व उतार लिये थे, तब जगत को स्वानुभूति पूर्ण उपदेश दिया था। यही बात आधुनिक युग के महापुरुष गांधीजी के सम्बन्ध में सत्य है। वह भी सच्चे समाजवादी थे, उन्होंने charety

आचार्यप्रवचन अभिरुद्ध आचार्यप्रवचन अभिरुद्ध
श्रीआनन्दश्री आनन्दश्री श्रीआनन्दश्री आनन्दश्री



begins at home के आधार पर स्वयं वैसा जीवन जीया। परिणाम यह हुआ कि देश में सादा जीवन पद्धति को बल मिला, लोग सामन्ती ढंग के विलासपूर्ण जीवन से घृणा करने लगे तथा यह लहर ठेठ उत्तर से दक्षिण तक फैलाई।

भारतीय अपरिग्रह के विचार में मूलतत्त्व स्व-परभेद-विज्ञान का है। तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ तथा अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने आत्मा के अतिरिक्त सब कुछ को पर माना, जिसकी चरम निष्पत्ति यह है कि “आत्मा” ने अपने शरीर को भी पर माना। जैसा कि इस देश के निर्गुणी सन्त कबीर ने एक स्थान पर शरीर को पिंजरे की उपमा दी तथा पिंजरे में आत्मा रूपी हंस कैद है। तात्पर्य यह है कि “आत्मा” स्व के अतिरिक्त शरीर तक को “पर” माना। जब यह अनुभव हो कि शरीर जर्जर हो गया है तब उसके प्रति उदासीनता रखकर “संत्लेषणा” व्रत अंगी-कार करना चाहिये। पाठक जानते हैं कि जैन आचार पद्धति में संत्लेषणा व्रत द्वारा मनुष्य अपने शरीर का मोह तमाग कर मृत्यु को सखा के रूप में निरपेक्षभाव से वरन करता है। ऐसी स्थिति में भौतिक सम्पदा के संग्रह का विचार नहीं हो सकता। भगवान् महावीर ने साधु जीवन में सर्वतः अपरिग्रह तथा गृहस्थ जीवन में अंशतः अपरिग्रह का विधान करके स्वेच्छा का नियंत्रण स्थापित किया। अभी गत चातुर्मास के समय मेरठ में मुनि श्री विद्यानन्दजी के पास कुछ साम्यवादी मित्र आकर “कम्यु-निज्म” के तत्त्व बताने लगे तब उन्होंने उन मित्रों से कहा कि आप किसे कम्युनिज्म के सिद्धान्त सम-झाने का प्रयत्न करते हैं जो सर्वथा निर्वसन है। भगवान् महावीर ने सम्पदा-संग्रह, आय के स्रोत आदि पर स्वेच्छा पूर्ण नियंत्रण लगाने का सन्देश दिया था। यही नहीं, दैनिक उपयोग में आने वाली तुच्छ वस्तुओं (जैसे दंतोन आदि) की सीमा निर्धारित करने का विधान किया। (देखिये श्रावक के अणुव्रतों में ७ वां अणुव्रत।) तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तु का उपयोग न करे। आज की भोग-प्रधान संस्कृति में जहां मनुष्य संग्रह करता है, आय के साधन विस्तृत करता है वहीं उसके व्यय पर भी वह स्वयं प्रतिबन्ध नहीं लगाता, परिणाम यह होता है कि उपभोग की वस्तु (परिमित मात्रा में उत्पादन होने कि स्थिति में) केवल उसको प्राप्त होती है कि जिसके पास उसको क्रय करने जितना धन हो। यह एक सुनिश्चित सिद्धान्त है कि जब किसी वस्तु का उत्पादन कम हो, बाजार में उसकी खपत अधिक हो तो मूल्य वृद्धि होती है जैसा कि आधुनिक अर्थशास्त्री डिमान्ड एण्ड सप्लाय के सिद्धान्त से प्रमाणित करते हैं। दैनिक उपयोग अथवा अन्य वस्तुओं के उपभोग पर जब हम स्वेच्छा से नियंत्रण लगाते हैं तब हम जहां अपरिग्रही हैं वहीं हम नागरिक धर्म का पालन भी करते हैं।

यह शंका से परे तथ्य है कि भगवान् महावीर अकिंचन थे। बालक जैसी मासूमियत के साथ निर्विकार भाव से यत्र-तत्र विचरण करते थे। जैन साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र में एक स्थान पर कहा है कि मूर्च्छापरिग्रहः तात्पर्य यह है कि मूर्च्छारहित होकर धर्मसाधना के उपकरण साधु रखता है। आधुनिक महापुरुष गांधीजी ने सम्पन्न लोगों के लिये ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। उसका तात्पर्य यह था कि जो कुछ संचित है उसे समाज की मालकी मान कर अपने को ट्रस्टी मानें ताकि समाज की आवश्यकता के समय उसका उपयोग किया जा सके। इसमें भी मूर्च्छारहित, आसक्तिरहित होने का तत्त्व विद्यमान है। समर्थ रामदास तथा छत्रपति शिवाजी का प्रसंग सर्व विश्रुत है, किन्तु समय परिवर्तन के साथ आज वैचारिक विकृति आ गई है। कई त्यागी होने का दावा करते हुए प्रचुर सामग्री मूर्च्छारहित या अनासक्त भाव से अपने पास होने का दंभ करते हैं, वास्तविकता यह है कि आज अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह में मूर्च्छारहित या अनासक्ति के भाव की गुंजाइश नहीं है। इस non attachment की भावना का अधिक विस्तार ने ढोंग पनपा है।

तात्पर्य यह है कि सब से बड़ा भेद अपरिग्रह तथा समाजवाद में यह है कि अपरिग्रह अपनी आवश्यकता को कम करने पर बल देता है किन्तु समाजवाद अधिक से अधिक कमी व्यय पर नियंत्रण कर सकता है, इससे अधिक उसमें गुंजाइश नहीं है। सारांश यह है कि अपरिग्रह एक प्रकार से अपनी जरूरतों को स्वात्मनियंत्रण के साथ कम करने की प्रेरणा देता है जबकि समाजवाद अधिक उत्पादन करके जरूरतें अधिक करके उपभोग की प्रेरणा देता है, यही संभवतः राष्ट्र के समृद्ध होने की कल्पना है। जहां तक राष्ट्र का प्रश्न है उत्पादन-वृद्धि आवश्यक है ताकि मनुष्य को अपनी आवश्यक वस्तु (जीवनोपयोगी) उचित मूल्य पर मिल सके किन्तु जहाँ मनुष्य के स्वयं के जीवन का सम्बन्ध है उसे स्वयं अपनी परिस्थिति के अनुसार अपने उपयोग की वस्तु में, जरूरतों में कमी करना चाहिए ताकि वह प्रत्येक परिस्थिति में अभाव से दुःख अनुभव न करें।



आनन्द-वचनान्त

- ☐ दुःख में अगर समभाव रहे तो दुःख दूर हो जाता है। सुख में अगर समभाव न रहे तो सुख का सरोवर सूख जाता है।
दुःख-सुख दोनों में समभाव रखना जरूरी है।
- ☐ सुख और आनन्द में अन्तर है—सुख की अनुभूति बाहरी वस्तुओं से भी हो सकती है, किन्तु आनन्द की अनुभूति तो आत्मा में ही जागृत होती है।
- ☐ जो व्यक्ति जितना बड़ा होता है, उसे उतनी ही सावधानी से अपने नियमों और आदर्शों पर चलना होता है। कार और बसें, कभी-कभी सड़क से हटकर भी चलें तो कोई खास दुर्घटना नहीं होती, किन्तु रेल को तो अपनी पटरी से एक इंच भी इधर उधर हटने का अवकाश नहीं और हटी कि दुर्घटना घटी। बड़े आदमियों का जीवन-पथ रेल का पथ है।
- ☐ मंगल
सच्चा मंगल वह है जो 'मं' अर्थात् पाप को 'गल' अर्थात् गाले, पाप को दूर करे। जब पाप दूर हो गया तो विघ्न-बाधा भी स्वतः ही दूर हो गयी। पाप के कारण ही विघ्न आते हैं। अतः मंगल का अर्थ है पाप को दूर करना, पाप का आचरण नहीं करना।
- ☐ संसार में सबसे बड़ा मंगल धर्म है। क्योंकि धर्म ही मनुष्य को सत्कर्म की ओर बढ़ाता है, सत्कर्म सब सुखों का मूल है। अतः सुख, आनन्द की प्राप्ति का मूल कारण धर्म है।

आचार्यप्रवृत्त अभिनेता आचार्यप्रवृत्त अभिनेता
श्रीआनन्दरौ अन्धकृष्ण श्रीआनन्दरौ अन्धकृष्ण

